फासीवाद को कैसे समझें

लेखक
टी एन कुचुन्नी विमल कैरलीय

गार्गी प्रकाशन

प्रथम संस्करण (बिहार) : 1939, साहित्य सेवक संघ, छपरा
प्रथम गार्गी संस्करणः अगस्त, 2018

लेखक : टी एन कुचुन्नी विमल कैरलीय

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

मुद्रकः
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया
जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95

ISBN : 81-87772-75-1

मूल्य : 20 रुपये

अनुक्रम

प्रकाशक की ओर से 5

अग्रलेख 7

विषय प्रवेश 9

समाज की प्रगति और फासीवाद 12

इटली में फासीवाद का जन्म 21

फासीवाद का साथी नाजीवाद 25

फासीवाद की तानाशाही 28

फासीवाद और नारीजाति 30

फासीवाद और धर्म 32

फासीवाद और नस्लवाद 34

फासीवाद का अन्त और समाजवाद 36

फासीवाद और क्रान्ति 38

उपसंहार 39

प्रकाशक की ओर से

यह छोटी-सी पुस्तिका 1939 में छपरा (बिहार) के साहित्य-सेवक-संघ द्वारा प्रकाशित की गयी थी। इसके लेखक टी एन कुचुन्नी विमल कैरलीय हैं और इसका अग्रलेख जाने माने तरक्कीपसन्द शायर सज्जाद जहीर ने लिखा था। उस समय फासीवाद अपने चरम पर पहुँच गया था। दूसरा विश्व युद्ध शुरू होने ही वाला था। हम देखते हैं कि इसे लेकर जो सम्भावनाएँ इस पुस्तिका में व्यक्त की गयी, वे काफी हद तक सच साबित हुईं। फासीवाद ने दूसरे विश्व युद्ध को बुलावा देकर दुनिया भर की जनता को संकट में डाल दिया। लेकिन जो आग उसने लगायी थी, वह खुद ही उसमें जलकर राख हो गया। समाजवादी रूस के नेतृत्व में बने संयुक्त मोर्चे ने फासीवाद का पूरी तरह विनाश कर दिया।

आज एक बार फिर फासीवाद लोगों के बीच में चर्चा का विषय बना हुआ है। दुनिया भर में फासीवाद का नये रूपों में उभार हो रहा है और ऐसी सरकारें जो जनता का दमन करके लोकतंत्र का गला घोंट रही हैं, उसे फासीवादी सरकार कहकर पुकारा जा रहा है। भारत में भी फासीवाद उभार पर है। यहाँ भी आज लोकतांत्रिक संस्थाओं पर हमले हो रहे हैं। चुनाव आयोग और न्यायालय की निष्पक्षता पर सवाल उठ चुके हैं। अपनी माँग के लिए आन्दोलन करने वाले मजदूरों, किसानों, छात्रों और महिलाओं का बर्बर दमन किया जा रहा है। जनता की एकता को तोड़ने के लिए जातीय नफरत और साम्प्रदायिक हिंसा का सहारा लिया जा रहा है। कोशिश यह हो रही है कि बहुसंख्यक जनता को धर्म के आधार पर गुमराह करके उनका वोट अपने पक्ष में कर लिया जाये ताकि चुनाव के जरिये एक ही पार्टी विशेष की सरकार ही कायम हो। तर्कशीलता और वैज्ञानिक नजरिये का प्रचार करने वालों के ऊपर आए दिन जानलेवा हमले हो रहे हैं। इतिहास को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि नयी-पीढ़ी अपने सच्चे इतिहास से परिचित न हो और उसका आसानी से सत्ताधारी वर्ग अपनी सेवा के लिए इस्तेमाल कर सके। देश के हालात बहुत बिगड़ चुके हैं।

भारत ही नहीं अन्य कई देशों में ऐसी सरकारें सत्ता में आयी हैं, जिन पर फासीवादी होने का आरोप लग चुका है। इनमें से सभी अपने-अपने देश में नस्लवादी

नफरत और झूठे राष्ट्रवाद के प्रचार-प्रसार में लिप्त हैं। ऐसी स्थिति में देश के बौद्धिक जगत में हलचल है। फासीवाद के उभार को लेकर अटकलें तेज हो रही हैं। एक बार हम इतिहास पर निगाह डालें तो मौजूदा हालात को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। दुनिया में फासीवाद दूसरे विश्व युद्ध से पहले इटली, जर्मनी, जापान और स्पेन में आ गया था। आगे विश्व विजय के मंसूबे को पूरा करने के लिए दूसरे विश्व युद्ध में फासीवाद ने दुनियाभर में भारी तबाही मचायी थी। सभी फासीवादियों का नारा था, अपने देश के लिए जान कुर्बान कर दो। इस नारे के साथ ही उन्होंने अपने देश की जनता को युद्ध में झोंक दिया। करोड़ों लोग मारे गये। न जाने कितनी माओं की गोदें सूनी हो गयीं। भयानक तबाही से दुनिया हिल गयी और पूरा यूरोप खण्डहर में बदल गया।

21वीं सदी में एक बार फिर दुनियाभर में नये फासीवादी अपने हथियार पैने कर रहे हैं। वैश्वीकरण के दौर में दुनिया का कोई भी देश इनकी मार से बाहर नहीं है। यह नया फासीवाद 20वीं सदी के फासीवाद से कहीं अधिक बर्बर और विनाशकारी है। इसके हमले से दुनिया को बचाने के लिए एक बार फिर से प्रगतिशील और लोकतांत्रिक ताकतों को एकजुट होना होगा। इसके लिए सबसे पहले फासीवाद को जानने-समझने की जरूरत है। उम्मीद है कि यह छोटी-सी पुस्तिका पाठकों को फासीवाद से परिचित कराने में सहायक होगी।

पुस्तिका में प्रयुक्त जो शब्द चलन से बाहर हो गये हैं, उन्हें नये प्रचलित शब्दों से बदल दिया गया है। ऐसा करते समय कोशिश यह की गयी है कि इसका मूल अर्थ न बदले। इसमें जिक्र की गयी घटनायें, जो 1939 में घट रही थीं, आज अतीत की बात बन गयी हैं। फिर भी विषय का कलेवर और उसकी प्रस्तुति देखते हुए घटनाओं और संदर्भों को 'वर्तमान काल' में ही रहने दिया गया है। पाठक पढ़ते समय हमेशा इस बात का ध्यान रखेंगे कि यह पुस्तिका आज से लगभग 80 वर्ष पहले लिखी गयी थी, तो कोई कठिनाई नहीं होगी। हमें पाठकों की प्रतिक्रिया का इन्तजार रहेगा।

--गार्गी प्रकाशन

अग्रलेख

गत कुछ वर्षों से फासीवाद की स्थापना और विकास के चलते सारे संसार का ध्यान इस विचित्र आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ है। सभी इसके राजनीतिक सिद्धान्त को ढूँढ रहे हैं, इसकी दार्शनिक नींव को जानना चाहते हैं। यह तो साफ है कि आधुनिक समाजवाद मार्क्स और एंगेल्स के दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित है। लेकिन फासीवाद का कोई निजी दार्शनिक या आर्थिक सिद्धान्त नहीं है। राष्ट्रवाद या कॉर्पोरेट राज्य वास्तव में पूँजी का शासन है जिसने अपने लोकतांत्रिक नकाब को दूर हटा दिया है।

फासीवाद ने दर्शन के स्तर पर नीत्से की विचारधारा को ग्रहण किया है। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। दर्शन में फासीवाद नाम का कोई स्थान नहीं है। नीत्से के सुपरह्यूमन (अतिमानव) सिद्धान्त में तर्क की अपेक्षा कवित्य को अधिक महत्त्व दिया गया है। स्पेंगलर के नैराश्यवाद में पूँजीपतियों के संसार पर आने वाले दुर्भाग्य की एक झलक नैतिक और भौतिक दिवालियेपन की कटु स्वीकृति है। नाजियों के जाति सिद्धान्त का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। मानव-विज्ञानवेत्ताओं ने कभी इसे महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक विषय नहीं माना। हिटलर की 'मेरा संघर्ष' नाम की पुस्तक में और उसके वक्तव्यों में भारत और भारतियों के बारे में घृणित उल्लेख से यह स्पष्ट है कि वह एक अनभिज्ञ उग्रवक्ता है जिसे जर्मनी के पूँजीपति अपने स्वार्थसिद्धि के काम में ला रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फासीवाद युद्ध की नीति का पालन करता है और मानव-जीवन तथा सम्पत्ति का अभूतपूर्व विनाश चाहता है। हमने इसकी बर्बरता अबिसीनिया में देखी है और अब हम स्पेन तथा चीन में इसके अमानुषिक व्यवहार को देख रहे हैं। लेकिन इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं कि अन्त में लोकतंत्र और स्वाधीनता की विजय होगी और संसार में ऐसी कोई भी ताकत नहीं जो मानवता को एक ऐसी उच्चतर सामाजिक व्यवस्था की ओर आगे जाने से रोके जिसमें पहुँचने से पहले संसार की दलित और उत्पीड़ित जातियों को भयानक विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा और बड़े त्याग करने होंगे। अपने सर्वमान्य शत्रुओं का सामना करना

होगा। इसके लिए फासीवाद और साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़ित मनुष्यों, साम्राज्यवादी देशों के जनसाधारण और भारत जैसे गुलाम देशों की अन्तर्राष्ट्रीय एकता स्थापित करनी पड़ेगी।

चीन और स्पेन में फासीवाद के ऊपर हमला करना भारत में साम्राज्यवाद पर कुठारघात करना है। इसी तरह हमारे देश में साम्राज्यवाद की पराजय से भारत के बाहर रहने वाले हमारे सहयोगियों की शक्ति बढ़ेगी।

मैं साम्राज्यवाद के समस्त विरोधियों के सम्मुख इस पुस्तिका को इसलिए प्रस्तुत करता हूँ कि वे हमारे सर्वसामान्य शत्रु फासीवाद के विषय में अधिक गम्भीरता से जान सकें। स्तालिन ने कहा है-- यदि क्रान्तिवादी सिद्धान्त रास्ते को आलोकित न करे तो व्यवहार अंधकार में रहता है।

जब तक कि हम फासीवाद की प्रकृति का भलीभाँति ज्ञान हासिल न कर लें तब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवादियों और फासीवादियों के खिलाफ लड़ने वालों की एकता को भी नहीं समझ सकते। उम्मीद है कि प्रस्तुत पुस्तिका हमें इस विषय को समझने में सहायता देगी।

--सज्जाद जहीर
(1939)

विषय प्रवेश

विश्व-क्रान्ति के इस युग में हमें इन बातों पर विचार करने की आवश्यकता है कि यह संसार किधर जा रहा है। मानव-समाज में इतना हाहाकार क्यों मचा हुआ है और जनता में क्यों इतनी भयंकर दरिद्रता और बेकारी फैली हुई है। यह तो सबको मानना पड़ेगा कि हजारों वर्षों से समाज के कुछ वर्ग दबे, उत्पीड़ित, शोषित और जीवन के सभी तरह के सुखों से वंचित रहते आये हैं और दूसरे वर्ग बहुत बड़े भौतिक सुखों के अधिकारी बन बैठे हैं। मानव-समाज के इस भेदभाव की बात मनुष्य के पिछले जन्म-कर्म का फल कहकर या ईश्वर की लीला मानकर छोड़ दी गयी है। इस भेदभाव को पिछले जन्म-कर्म का फल या ईश्वर की मर्जी मानना मिथ्या और अज्ञानतापूर्ण है-- जिनको समाज विज्ञान या मानव समाज का थोड़ा बहुत अनुभव है, वे यह बता सकते हैं। कोई अशिक्षित और विचार-शून्य आदमी पूर्वजन्म या भाग्य में विश्वास कर सकता है। मगर शिक्षित और विचारशील आदमी इस बात को नही मान सकता। ईश्वरवादी लोग इस बात को भगवान के सिर पर मढ़कर छुटटी पाते हैं या ऊँच-नीच के इस भेद को कर्म-फल कहकर उस प्रसंग को समाप्त करना चाहते हैं; क्योंकि वे उसमें छिपे हुए रहस्यों को खोलना नहीं चाहते। ऐसा करने से ईश्वरवाद की आड़ में होने वाली अनीतियों की बातें खुल जाएँगी या ईश्वर, स्वर्ग और पुण्य के नाम पर होनेवाले उनके कर्म ढोंग साबित होंगे। यदि समाज में केवल थोड़े से व्यक्ति ही भूखे और बेकार रहते तो हमें यह बात छेड़ने की इतनी जरूरत न पड़ती लेकिन हम देखते हैं, आजकल थोड़े से लोगों को छोड़कर बाकी सारी जनता बेकार है-भूखी है और जीवन की उन्नति से बिल्कुल वंचित है। इस बात को ईश्वर की इच्छा या पूर्वजन्म का कर्म-फल मान कर छोड़ा नहीं जा सकता। ऐसी सोच मूर्खता की हद ही है।

जब हम मानव-समाज का निरीक्षण करते हैं, तब हमें यह निष्पक्ष भाव से मानना पड़ता है कि सारी विषमताएँ मनुष्य की स्वार्थपरता से होनेवाली करतूतों का ही फल है। जो लोग विज्ञान को झूठा बताने के लिए तैयार होंगे, उनके आगे हमें अपना तर्क रखने की जरूरत नहीं। हमें सब बातें विज्ञान की दृष्टि से देखनी चाहिए।

मानव-समाज के हालात और उसकी गतिकी को समझने के लिए और उसकी आलोचना करने के लिए हमको समाज-विज्ञान का ही सहारा लेना पड़ेगा।

मनुष्यों के इस समूह को हम 'समाज' नहीं कह सकते; क्योंकि कहा गया है कि 'समं अजन्ति जनः अस्मिन इति' यही समाज की परिभाषा है यानी समाज मनुष्यों के उस समूह को माना जाता हैं, जिसके अंग एक-सी स्थिति, गति, विचार और प्रवृत्ति वाले हों। लेकिन मानव-समाज का संगठन इस परिभाषा के अनुसार नहीं हुआ है; क्योंकि हम जानते हैं कि अति प्राचीन समय से ही समाज ऊँच-नीच के भेदों में बँटा हुआ है। ऊँच-नीच का भेद केवल एक ही मामले में नहीं; बल्कि धन, विद्या और खानपान इत्यादि सभी मामले में एक समूह दूसरे समूह से भिन्न है। यह ऊँच-नीच का भेद समाज में उसी दिन शुरू हुआ, जब सभ्यता का निर्माण होना शुरू हुआ और जब से मनुष्य ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए एक दूसरे के ऊपर हाथ उठाना सीख लिया। आजकल यह भेद अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है तथा उसने भयंकर और विषम स्थिति का रूप धारण कर लिया है क्योंकि हम देखते हैं कि समाज में मुट्ठी भर लोग अपनी पूँजी या धन-दौलत की कमाई के बल पर इस लोक में स्वर्गीय जीवन जी रहे हैं और बाकी सब लोग अपनी जीविका चलाने के लिए चिंतित हैं- गरीब हैं- और बेकार हैं। समाज में कुछ ऐसे वर्ग हैं जो दबे हैं, उत्पीड़ित हैं, शोषित हैं और दूसरों की दृष्टि में निकृष्ट हैं। सबसे खेदजनक बात तो यह है कि अधिकांश लोग आजकल बेकार तो हैं ही, लेकिन उनको पहनने भर के लिए कपड़ा और खाने भर के लिए भोजन तक भी नहीं मिल रहा है। यह किसी एक देश की हालत नहीं है, बल्कि सारे संसार में यह भयंकर विषमता उपस्थित हुई है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि समाज-संगठन के समय से ही यह विषमता वर्ग-विभेद के रूप में पैदा हुई थी। अब यह प्रश्न उठता है कि इसका कारण क्या हो सकता है? समाज-विज्ञान हमें बताता है कि पहले मानव-जीवन एक ऐसी दशा में था जब इस तरह कोई विषमता पैदा नहीं हुई थी। वह मानव जीवन की शुरुआती दशा थी, जब सब लोगों को पेट भर भोजन मिलता था और आपस में किसी भी तरह का झगड़ा या मनमुटाव पैदा नहीं हुआ था, यानी सब लोग एकजुट होकर जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस समय जनसंख्या बहुत कम थी और प्रकति के अनन्त क्षण में सबको आवश्यकता से अधिक खाद्य-पदार्थ मिलता था और खाने भर तक ही मानव जीवन सीमित था।

इसके बाद एक ऐसा समय आ गया जब जनसंख्या पहले से कई गुना बढ़ गयी

और मनुष्य को भोजन जुटाने के लिए शारीरिक परिश्रम करना पड़ा। खेती करने लायक भूमि व्यक्तिगत अधिकार में आ गयी। खेती उस समय मनुष्य के जीविकोपार्जन का मुख्य आधार थी। जो लोग या वर्ग कम ताकतवाले थे उन पर अधिक ताकतवालों ने अत्याचार करके उनका पैदा किया हुआ सामान और उनकी भूमि हड़प ली और उनको अपना गुलाम बना लिया। इस प्रकार सारा मानव-समूह दो श्रेणियों में बँट गया-- एक शासक या सबल और दूसरा शासित या निर्बल। शासक वर्ग शासित या गुलामों के शारीरिक परिश्रम के बल पर ही जीवन व्यतीत करने लगा। इसके चलते शासित-वर्ग को कठिन परिश्रम करने पर भी अपनी भूख मिटाने के लिए तरसना पड़ता था।

आधुनिक मानव-समाज इस प्रारम्भिक दशा का एक विकसित और परिवर्तित रूप है। आधुनिक समाज को भी हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं। शासक या शोषक-वर्ग जिसमें जमींदार, पूँजीपति, धर्म के ठेकेदार, पुरोहित और सरकार शामिल हैं। और दूसरा शासित या शोषित-वर्ग जिसमें बाकी सारी जनता शामिल है। शासक वर्ग जनता के शोषण से ही खुद को अमीर बना रहा है। जनता के शारीरिक परिश्रम का सारा फल इन्हीं शोषकों या शासकों के पास चला जाता है। सरकारी कानून ही इनका हथियार है। सरकार और बाकी शोषकों का स्वार्थ एक दूसरे से जुड़ा हुआ है क्योंकि सरकार उन्हीं शोषकों के पैरों पर खड़ी है और सरकार ने ही इन शोषकों को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए बना रखा है। आज की इस भयंकर गरीबी का मुख्य कारण यही है कि सारी सम्पत्ति इन शोषकों के हाथ में केन्द्रित हो गयी है। आज जब शोषण अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है, जनता को बेकारी के रोग से ग्रस्त होना पड़ा है।

समाज की प्रगति और फासीवाद

आज इनसान की जिन्दगी को देखकर शायद ही कोई इस पर यकीन करे कि आधुनिक मानव का विकास बन्दर जैसी किसी आदिम प्रजाति से हुआ है। लेकिन यह सच है। पेड़ों पर रहने वाली यह प्रजाति किन्हीं कारणों से जमीन पर चलने के लिए बाध्य हुई। वहीं से आदि मानव के विकास की शुरुआत हुई। उस समय न तो इनसान का कोई परिवार था और न ही आज जैसा समाज। सम्पति, वर्ग और सरकार भी नहीं थी। इतिहास की यह यात्रा कम रोचक नहीं है कि कैसे कालान्तर में ये सब पैदा हुए और इनसान ने सभ्यता के युग में प्रवेश किया।

जंगली अवस्था

हम पहले अध्याय में बता चुके हैं कि समाज-संगठन के साथ-ही-साथ समाज में दो श्रेणियाँ पैदा हुईं- शोसक या शासक और दूसरा शोषित या शासित। इन दो श्रेणियों की उत्पत्ति के पहले मानव-समाज में किसी भी तरह की विषमता नहीं थी। उस समय कोई किसी के अधीन न था या कोई किसी का गुलाम या शासक नहीं था। मनुष्य-जीवन की इस दशा को जंगली अवस्था कहते हैं। समाज-संगठन इसी दशा के तुरन्त बाद हुआ।

डार्विन के विकासवाद सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य वानर के ही विकास का फल है। शुरू में मनुष्य शिकार के द्वारा जीवन व्यतीत करता था। उस समय मनुष्य जीवन और मगीय-जीवन में बड़ी समता थी। इसी शिकारी-जीवन से धीरे-धीरे पारिवारिक जीवन की भी उत्पति हुई। पारिवारिक जीवन की उत्पति के बाद भी मनुष्य शिकार करके ही खाता था। धीरे-धीरे मनुष्य ने खेती करना सीखा। उस समय की भूमि पर आज के समान व्यक्तिगत अधिकार नहीं था। अपने परिवार की जरूरत भर के लिए लोग थोड़ी सी जगह पर अनाज पैदा किया करते थे। उस समय लोग खेती अलग-अलग नहीं करते थे बल्कि सामूहिक रूप से मिलकर एक जगह खेती करते थे और फसल होने पर अपनी जरूरत भर के लिए आपस में अनाज बाँट लेते थे। यह दशा सभ्यता की उत्पति के पहले की है। इसके चलते उस समय मानव-समाज में कोई कलह या लड़ाई नहीं होती थी।

गुलामी प्रथा

सैकड़ों सालों बाद मानव-समाज की जंगली अवस्था भी खत्म हो गयी। जब जनसंख्या में कई गुना वृद्धि हो गयी तब खेती की भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार स्थापित हो गया। व्यक्तिगत अधिकार के लिए एक वर्ग दूसरे से लड़ने लगा। एक वर्ग जिनके पास भूमि नहीं थी वह दूसरे भूमि-मालिकों से लड़ने लगा। अधिक ताकतवाले ने कमजोर वर्ग से लड़कर भूमि को हड़प लिया और उस पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित किया। इस प्रकार सारी भूमि अधिक ताकतवाले वर्ग के हाथ आती गयी। जो कमजोर वर्ग लड़ाई में परास्त हुए उनको सबल वर्ग ने अपना गुलाम बना लिया। खेतों में काम करने के लिए इस प्रकार के गुलामों को नियुक्त किया गया। जिन स्वामियों के पास गुलामों की संख्या कम थी या उनका अभाव था वे अपने सम्पत्ति के दम पर गुलामों को मोल लेते थे। इस प्रकार उस समय गुलामों का क्रय-विक्रय भी हो रहा था। मानव-समाज की इस दशा को "गुलामी अवस्था" कहा गया। मालिक अपने गुलामों से थोड़ी सी मजदूरी पर दिन भर काम कराते थे और उनके परिश्रम का पूरा लाभ उठाते थे।

उन श्रमजीवी गुलामों को थोड़ी सी मजदूरी या भोजन से ही सन्तुष्ट होना पड़ता था।

सामन्तशाही

कई शाताब्दियों के बाद मानव-समाज की एक ऐसी दशा आ गयी जब गुलाम प्रथा खत्म हो गयी। लेकिन भूमि जनता के हाथ भी अधिक दिन नही रही, क्योंकि कुछ शाक्तिशाली व्यक्तियों ने सारी भूमि को जनता से हड़प कर अपने कब्जे में कर लिया। गुलाम वर्गों के लोप हो जाने के कारण भू-स्वामियों ने अपनी भूमि को खेती के लिए पराजित वर्गों के हाथ दे दिया। इस प्रकार कृषक वर्ग की भी उत्पत्ति हुई यही कृषक वर्ग पहले भूमि के असली अधिकारी थे। इस समय खेती करने के लायक सभी भूमि कुछ शाक्तिशाली व्यक्तियों या वर्गों के हाथ में आ गयी। इन लोगों में जो सबसे बलवान था। वह उनका राजा बन बैठा।

भारत के दक्षिणवर्ती केरल प्रदेश में आजादी के पहले 'चेरून्मकल' नाम की एक गुलाम जाति रहती थी। वह केरल के बड़े-बड़े जमींदारों की गुलाम थी। एक साधारण जमींदार कम से कम पच्चीस-तीस गुलाम रखता था। दिन भर खेतों में काम करना उनका पेशा था और शाम को खाने के लिए केवल दो सेर अनाज मजदूरी के रूप में

उनको दिया जाता था।

मानव-समाज संगठन करीब इसी समय हुआ है। सारे समाज का अधिकारी राजा था। राजा के नीचे भूमि का अधिकारी वर्ग था जो सामन्त कहा जाता था। कृषक और अन्य पेशेवाले साधारण लोग इन सामन्तों के अधीन थे। इस प्रकार मानव-समाज के संगठन के साथ ही समाज दो श्रेणियों में बँटा था जो सामन्तशाही में भी जारी रहा। इस व्यवस्था में एक सामन्त था जिनको शासक कहते हैं और दूसरा साधारण जनता जिसे शासित वर्ग कहते हैं। समाज की इस दशा को सामन्तशाही अवस्था कहते हैं।

समाज-संगठन और सभ्यता

हम पहले कह चुके हैं कि सामन्तशाही शासन के समय ही समाज का संगठन हुआ है। यह संगठन शासक वर्ग ने किया। यहाँ एक बात कह देना उचित होगा कि राजा का सारा बल सामन्तों के हाथ में था। उन दोनों वर्गों का कार्य और स्वार्थ एक ही था। दोनों का स्वार्थ एक दूसरे की मर्जी और सहायता से ही चल सकता था। जब एक राजा को दूसरे राजा से लड़ना पड़ता था, तब सामन्त ही अपनी सेनाओं से उनकी सहायता करते थे। शासक वर्गो ने समाज को इस तरीके से बाँट दिया कि साधारण जनता के मन में राजा और सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह का भाव न पैदा हो। इन शासकों का शासन अन्यायपूर्ण था और दूसरी बात यह थी कि सर्व साधारण के परिश्रम के फल को चूसने वाले शासक वर्ग केवल अपने स्वार्थ की रक्षा करना चाहते थे। कृषक, मजदूर और अन्य पेशा करनेवाली साधारण जनता को कठिन परिश्रम करने पर भी अपने पेट भरने के लिए पर्याप्त अनाज नहीं मिलता था। शासक वर्ग ने अपनी प्रभुता को कायम रखने और अन्यायों को छिपाने के लिए धर्म, सभ्यता, आचार, व्यवहार, नीति, न्याय, इत्यादि की अपने हिसाब से रचना की। सभ्यता, शासन, नियम आदि की रचना शासक वर्ग ने अपने अन्यायों को छिपाने के लिए किया था। शोषित जनता शासकों द्वारा सब और से दबायी जाती थी और वह उत्पीड़ित थी। शासकों ने उसको असभ्य और अस्पृश्य बताकर विद्या, ज्ञान और बुद्धि-विकास से वंचित रखा। इस कारण भोली-भाली जनता अपने ऊपर होने वाले जुल्मों को पहचान नहीं सकी और सभी ने अपनी शोचनीय दशा को भाग्य का दोष समझ लिया।

आधुनिक समाज जिस सभ्यता, संस्कृति, आचार, व्यवहार और नीति-न्याय के आधार पर चल रहा है, वह इन्हीं प्रारम्भिक सभ्यतादि का विकसित रूप है। हम

शोषक और शासक वर्ग के अन्यायपूर्ण प्रभुत्त्व को स्थायी रखने के लिए रची गयी इस सभ्यता को असभ्यता, आचार व्यवहार को अनाचार, संस्कृति को कुसंस्कृति, राज नियम और नीति-न्याय को अनीति ही कह सकते हैं। जब से समाज का संगठन इस तरीके से हुआ, तब से अभी तब शासक वर्ग या शोषक वर्ग समाज के ऊपर इन्हीं के बल से शासन कर रहे हैं।

धर्म

सामन्तशाही शासन में धर्म समाज का एक प्रधान अंग बन गया। धर्म के संचालक, ईश्वर के किंकर या स्वर्ग और पुण्य के ठेकेदार पुरोहित वर्ग भी राज-वर्ग और सामन्तों के ही हाथ में थे। इन तीनों वर्गों ने साधारण जनता की कमाई को चूसकर अपना प्रभुत्त्व जमा रखा था। राजा और सामन्त वर्ग राजकीय नियम और अपने स्वार्थ के लिए उसको दबाते थे। पुरोहित वर्ग ईश्वर-स्वर्ग, नरक, पुण्य इत्यादि के नाम पर अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए जनता का शोषण कर रहे थे। सारे शास्त्रों का निर्माता और शिक्षा का संचालक यही पुरोहित वर्ग था। इस वर्ग ने जो कुछ शास्त्र रचा, जिस सभ्यता का निर्माण किया वह केवल अपनी प्रभुता को कायम रखने के लिए ही था।

पूँजीवाद

सामन्तशाही के बाद आधुनिक पूँजीवादी शासन दुनिया में कायम हुआ। इस पूँजीवादी शासन की अवस्था का आरम्भ करीब 18वीं सदी से होता है। पूँजीवादी शासन का आरम्भ दुनिया में उन देशों में पहले हुआ जहाँ मशीनों का अविष्कार हुआ और उनकी उन्नति से कल-कारखाने स्थापित हुए। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी और जापान इत्यादि देश काम में सबसे आगे बढ़े। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। वह यह कि संसार के देशों को हम दो भागों में बाँट सकते है। एक कृषि-प्रधान देश जहाँ केवल कच्चे माल पैदा होते हैं और दूसरा उद्योग-प्रधान। इटली, भारत, चीन, रूस जैसे देश कृषि-प्रधान हैं और जापान, इग्लैंड, जर्मनी जैसे राष्ट्र उद्योग-प्रधान हैं। इन्हीं उद्योग-प्रधान देशों में मशीनों के आविष्कार और उसकी प्रगति से कल-कारखाने स्थापित हुए। इन देशों में कालक्रम से असंख्य यंत्रशालाएँ स्थापित हो गयीं। जितना सामान कई दिनों में असंख्य मनुष्यों के शारीरिक परिश्रम से बनता था उतना अब कारखानों में एक ही दिन में एकाध व्यक्ति की सहायता से बनने लगा। इस कारण उन देशों की जरूरत से कई गुना ज्यादा चीजें कल-कारखानों में बनने

लगीं। एक ओर मशीनों द्वारा प्रचुर रूप में सामान तैयार होने लगा और दूसरी ओर करोड़ों मजदूर और पेशेवाले वर्ग जो पहले अपने हाथ से सामान बनाकर या काम करके जीविका चलाते थे, बेकार हो गये। पूँजीपति उद्योग में पिछड़े कृषि-प्रधान देशों में अपना सामान बेंचकर ढेर सारा धन उन देशों से ले जाने लगे।

कल कारखानों को स्थापित करने के लिए बड़ी पूँजी की आवश्यकता थी। इस कारण कल-कारखानों की स्थापना उन्हीं बाबुओं ने की, जिन्होंने जनता को चूसकर बेहिसाब धन अपने पास इकट्ठा किया था। पूँजीवादी व्यवस्था में कारखानों के मालिकों को ही नहीं शामिल कर सकते, बल्कि बड़े-बड़े व्यापारी, महाजन इत्यादि लोग भी बड़ी संख्या में जनता का शोषण करनेवाले हैं। धर्म के ठेकेदार पुरोहित वर्ग भी अब इस वर्ग के अंग हैं। इनके अतिरिक्त एक दूसरा वर्ग भी अपने सरकारी कानून के बल पर श्रमजीवियों का (किसानों का) शोषण पहले से ही कर रहा है; वह है जमींदार। गुलाम देशों में सरकार ने जमींदारो को तैयार किया था; क्योंकि जमींदार वर्ग के सहारे सरकार की लूट जारी रहती थी। इन देशों का स्वार्थ पूँजीपतियों की तरह जनता का शोषण करना था।

उपनिवेश

पूँजीपति लोग जो माल अपनी पूँजी के बल से पैदा करते हैं, उसको बेचने के लिए उनको उपनिवेश ढूँढना पड़ा क्योंकि वे अपना माल, उन्हीं देशों में बेचना चाहते हैं, जहाँ से उनको काफी मुनाफा मिलता है। अपने देश में उनको अधिक मुनाफा नहीं मिल सकता, क्योंकि कारखानों की अधिक स्थापना से वहाँ की जनता में अधिकांश बेकार हो जाते हैं। समाज की सम्पत्ति शोषकों के हाथ केन्द्रीभूत हो जाने के कारण जनता की गरीबी बढ़ जाती है और लोगों की क्रय-शक्ति बहुत कम हो जाती है। अतः पूँजीपति भारत जैसे कृषि-प्रधान देशों में (जो उद्योग-धन्धों में पिछड़े हुए हैं) जाकर अपनी व्यापारिक संस्था खोल काफी मुनाफा कमा रहे हैं। कृषि-प्रधान देशों में कच्चे माल को सस्ते दाम में खरीद कर अपने यहाँ ले जाते हैं और पक्के माल के रूप में उनको फिर वहीं लाकर बेच डालते हैं, जिससे जनता का धन काफी मात्रा में उनके पास पहुँच जाता है। पूँजीपतियों की इस विक्रय नीति के कारण कृषि-प्रधान उपनिवेशों में बेकारी और गरीबी भयंकर रूप में फैली हुई है।

आजकल सभी देशों में किसी न किसी रूप में पूँजीवादी शासन कायम हुआ है। रूस को छोड़कर जहाँ इस समय समाजवादी व्यवस्था कायम है, बाकी सभी देशों

के समाज में पहले बतायी गयी शासक या शोषक और दूसरा शाषित दो श्रेणियाँ पायी जाती हैं। शोषक वर्ग में जमींदार, पूँजीपति और सरकार शामिल हैं।

संसार के सभी पिछड़े हुए देश इस प्रकार उपनिवेशों के रूप में पूँजीपतियों के हाथ बँट गये। ये पूँजीपति साम्राज्यवादी बन गये। गरीब और पिछड़े देश के उपनिवेश बन गये। इन साम्राज्यों के शासनाधिकार इन्हीं शोषकों के हाथ में हैं। जब एक ही उपनिवेश में एक से अधिक साम्राज्यवादी सरकारें अपना प्रभुत्त्व जमाना चाहती हैं, तब उनमें लड़ाई हो जाती है। पहला विश्व युद्ध इसी झगड़े का परिणाम था।

पूँजीवाद का दुष्परिणाम

केवल जनता की बेकारी और गरीबी ही पूँजीवाद का दुष्परिणाम नहीं हैं; बल्कि इससे मानव जाति के ऊपर एक भयंकर विपत्ति आ जाती है जो संसार की शान्ति को भंग कर देती है। प्रत्येक पूँजीपति अपने कारखानें को चलाने की कोशिश करते हैं लेकिन तैयार माल की बिक्री जब तक होती रहेगी तभी तक कारखाने चल सकते हैं। 18वीं सदी के शुरुआती 25 वर्षों तक दुनिया में कई बाजार खुले हुए थे। लेकिन पिछले कुछ वर्षों से परिस्थिति बदल गयी है। संसार के सभी उपनिवेशों (बाजारों) को सरकारों ने आपस में बाँट लिया है। एक समय इंग्लैड दुनिया के अधिकांश बाजारों का मालिक था। फिर जर्मनी ने सभी कारखाने स्थापित कर अपने लिये उपनिवेश कायम किये। इसके फलस्वरूप सन 1914 में पहला विश्वयुद्ध शुरू हुआ। उस समय मैदान खाली पाकर अमेरिका और जापान ने भी उपनिवेश कायम किये। उनके कारखानों में बहुत अधिक तादाद में माल बनने लगा। इस समय सभी पूँजीवादी राष्ट्र एक दूसरी बड़ी लड़ाई के लिए तैयारी कर रहे हैं; क्योंकि इंग्लैंड़, जर्मनी, फ्रांस, इटली और जापान इत्यादि सभी शोषक साम्राज्य एक दूसरे को अपना शत्रु समझ रहे हैं। इन राष्ट्रों का स्वार्थ एक ही है, यानी कमजोर मुल्कों को हड़प कर वहाँ के कच्चे माल को सस्ते दाम में खरीद लेना और उसको पक्के माल के रूप में बदलकर महँगे दाम में वहीं बेच डालना ही उनका उद्देश्य है। वे सभ्यता और शान्ति के नाम पर वहाँ की जनता की सम्पत्ति हर तरह से चूसना चाहते हैं और इस काम में एक दूसरे को अपना विरोधी समझते हैं। वे यह जानते हैं कि जब तक मालों के लिए उपनिवेशों की छीना-झपटी रहेगी तब तक संसार में अशान्ति, विषमता और सभी देशों में भयंकर गरीबी और बेकारी कायम रहेगी, इसके बावजूद वे अपने स्वार्थ को छोड़ना नहीं चाहते। वे अपने देश की जनता से कोई सहानुभूति नहीं रखते क्योंकि वहाँ का शासन

शोषक वर्ग के हाथ में है। उनका प्रभुत्त्व केवल अपने उपनिवेशों की जनता के शोषण पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि इस काम के लिए अपने देश की जनता को भी चूसना पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पूँजीवाद ही आधुनिक संसार की सभी लड़ाइयों और विषमताओं का एकमात्र कारण है।

इटली की प्रगति

इंग्लैड, जर्मनी, जापान आदि साम्राज्यवादी देशों का सामना करने के लिए कुछ पिछड़े हुए देश भी तैयार हो चुके हैं। इनमें इटली प्रमुख है। इटली कृषिप्रधान देश हैं फिर भी वहाँ कल-कारखानों की उन्नति हो रही है और वह अन्य शोषक साम्राज्यों के समान एक पूँजीवादी राष्ट्र बनना चाहता है। इस समय इटली का शासन जनता का शोषण करनेवाले पूँजीपतियों और जमींदारों के हाथों में है। इटली भी अब अबीसीनिया जैसे एक कमजोर, उद्योगहीन देश को हड़पकर सभ्यता के बहाने वहाँ की जनता को लूट रहा है;

पूँजीवाद की विषमता

आजकल मशीनों के इस्तेमाल से करोड़ों आदमियों का बेकार होना और साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और जमींदारी शोषण से भूखों की संख्या लाखों की तादाद में प्रतिदिन बढ़ जाना एक साधारण सी बात हो गयी है। इसके अतिरिक्त सभी देशों में जनसंख्या बढ़ती ही जा रही है। सिर्फ भारत में सन 1921 से 1931 तक दस वर्षों में 3 करोड़ से अधिक आदमी बढ़ गये हैं लेकिन इससे भी अधिक गति से विषमता बढ़ती ही जा रही है। बढ़ती विषमता ने समाज में उथल-पुथल मचा रखा है।

साम्राज्यवाद

हम पहले बता चुके हैं कि पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। पूँजीवाद का विकसित रूप ही साम्राज्यवाद है। यह भी कहा जाता है कि इटली, जर्मनी, इंग्लैड, जापान इत्यादि साम्राज्यवादी राष्ट्रों के बीच दुनिया के कमजोर देशों को उपनिवेशों के रूप में बाँट दिया गया है। इन कमजोर देशों की जनता की सम्पत्ति चूसकर ही ये साम्राज्यवादी मोटे हो रहे हैं। और इसी कारण भयानक बेकारी और गरीबी उन देशों को तबाह कर रही है। साम्राज्यवादी शासन पूँजीपति और जमींदार वर्ग के हाथ में है। लूट की सम्पत्ति शोषक जमींदारों (सामन्तों) और पूँजीपतियों के हाथ बँट जाती है। साम्राज्यवादी देशों की जनता को इस सम्पत्ति के हिस्से में जरा भी भाग नहीं मिलता। उसकी बेकारी और गरीबी प्रतिदिन बढ़ती ही

जाती है। इंग्लैड, जर्मनी जैसे शोषक देशों की जनता की हालत भारत जैसे गुलाम और शोषित उपनिवेश की जनता से किसी भी माने में अच्छी नहीं कही जा सकती वहाँ भी घोर दरिद्रता और बेकारी फैली हुई है।

क्रान्ति

पूँजीवादी और साम्राज्यवादी शोषण के चलते पिछले 25 वर्षों से कई देशों की जनता में बड़ा असंतोष फैल रहा है। कुछ देशों में जनता का असंतोष क्रान्ति का रूप धारण कर चुका है और अन्य देशों में भी यह वर्ग संघर्ष का रूप धारण कर रहा है। सभी देशों की उत्पीड़ित जनता इस पाशविक शासन को जड़ से उखाड़ कर फेंकना चाहती है। रूस की जनता ने इस आदर्श कार्य को व्यवहार में हासिल करके संसार के सामने रखा है। रूसी क्रान्ति की सफलता के बाद संसार के सभी साम्राज्यवादी विश्व-क्रान्ति और समाजवाद का नाम सुनकर भयभीत हो गये हैं। वे यह बात समझ गये हैं कि अब हमारे देश में भी शोषित और शोषक वर्ग में लड़ाई (वर्ग संघर्ष) छिड़ेगी और यह साम्राज्य मिटटी में मिल जाएगा। इसलिए जनता में क्रान्ति का जो भाव पैदा हो रहा है उसको उन्होंने दबाने की कोशिश की है। वे पूँजीपतियों, जमींदारों और सरकार द्वारा होनेवाले शोषण और दमन की ओर से जनता का ध्यान हटाकर उसे वर्ग संघर्ष से अलग रखना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन शोषक वर्गों ने अपने राष्ट्र की जनता के सामने शासन पद्धति का एक नया नाम रखा है-- राष्ट्रवाद, जिसके अनुसार उनके देश की जनता की गरीबी केवल अपने देश की शान बढ़ाने और कमजोर देशों को हड़प कर उन पर शासन करने से ही मिट सकती है। वे असल में शासन और सभ्यता के प्रचार के बहाने उन देशों का शोषण कर केवल खुद को मोटा रखना चाहते हैं। कमजोर देशों को लूटने के लिए एक बड़ी सेना और साजो-सामान की आवश्यकता होती है। यदि जनता साम्राज्यवादी लड़ाई के विरुद्ध होती, तो वह अपनी मजबूत नौजवान सन्तानों को सेना में भर्ती करके और लड़ाई के खर्च के लिए साजो-सामान देकर अपने शासक वर्ग की सहायता न करती। इसलिए शासक वर्ग ने जनता को राष्ट्रवाद के नाम पर बहकाकर उसको इस भ्रम में डाल रखा है कि ऐसी लड़ाईयों से ही देश की गरीबी मिट सकती है। जिस दिन साम्राज्यवादी देशों की जनता को अपने शासकों के इस धोखे का पता चलेगा, उसी दिन उनका साम्राज्य और शोषण मिट्टी में मिल जाएगा। लेकिन इस समय इंग्लैड, जर्मनी, इटली और जापान की जनता पूँजीपतियों के इस राष्ट्रवाद के जाल में फँसी हुई है और अपने ऊपर सरकार, पूँजीपति और जमींदार द्वारा होनेवाले शोषण, दमन और पाशविक

शासन को भूल बैठी है।

फासीवाद

इस राष्ट्रवाद का आविष्कार पहले इटली ने किया जिसकी शासन-पद्धति का नाम है 'फासीवाद' इटली के बाद अन्य साम्राज्यवादी शोषकों ने भी इसे अपना लिया। फासीवाद की राष्ट्रीयता का उद्देश्य जनता में विश्वक्रान्ति और वर्ग संघर्ष विरोधी भाव पैदा करना है, उसको साम्राज्यवादी लड़ाई में झोंक देना है और उसका लाभ उठाना है। देश की शान के नाम पर लड़ी जानेवाली ऐसी लड़ाइयों से गुलाम देश तबाह हो जाते हैं। वहाँ का धन और शासनाधिकार साम्राज्यवादियों के हाथ में आ जाता है। जर्मनी, इटली, और जापान इत्यादि फासीवादी देशों की जनता, जिसकी नौजवान सन्तानों के बल से साम्राज्यवादी लड़ाई लड़ी जाती है, साम्राज्यवादी शासन के किसी भी फायदे से वंचित रहती है।

राष्ट्रवाद के साथ-साथ 'नस्लीय नफरत' भी फासीवाद का एक मुख्य हथियार है। अकसर फासीवादी अपने देश की बहुसंख्यक जनता का समर्थन पाने के लिए अल्पसंख्यक लोगों के धर्म, नस्ल या राष्ट्रीयता पर हमला करते हैं। उनके खिलाफ देश की बहुसंख्यक जनता में नफरत के बीज बोते हैं, जैसे-- जर्मनी में हिटलर ने यहूदी विरोध की आँधी चलाने में जमीन-आसमान एक कर दिया।

अभी तक जो कुछ कहा गया, उससे यह बात स्पष्ट है कि पूँजीवाद का विकसित रूप ही साम्राज्यवाद है और उसी का एक नया रूप फासीवाद है। अगले अध्याय में यह बताया गया है कि इटली में यह फासीवादी शासन कैसे स्थापित हुआ और उसका ढंग क्या है?

इटली में फासीवाद का जन्म

अभी तक हमने देखा कि पूँजीवाद में किस तरह समाज की विषमता बढ़ती जाती है। थोड़े से लोग मालामाल हो जाते हैं और बहुसंख्य जनता कंगाल हो जाती है। बाजार और कच्चे माल की लूट-खसोट के लिए पूँजीपति गरीब देशों पर अपना कब्जा जमा लेता है। यही से साम्राज्यवाद की शुरुआत होती है। लेकिन आगे चलकर साम्राज्यवादी शासन फासीवाद का एक नया रूप लेता है जो राष्ट्रवाद और 'नस्लीय नफरत' के प्रचार से खुद को मजबूत बनाता है और जन-समर्थन हासिल करता है। दुनिया में फासीवाद की पहली प्रयोगशाला के रूप में इटली सामने आया।

इटली में राजनीतिक आन्दोलन

फासीवाद फासियो शब्द से निकला है, जो इटली के राष्ट्रवादी लोगों के संघ का नाम है। इस संगठन को सन 1914 में इटली में बैनिटो मुसोलिनी ने बनाया था। उस समय इटली में कई राजनितिक संघ स्थापित हो चुके थे। उन संघों का आन्दोलन देश में प्रबल रूप से चल रहा था। उनमें मुख्यतः दो संघ थे- सुधारवादी और क्रान्तिकारी। इनमें हालाँकि सुधारवादी दल का ही पहले बहुमत था फिर भी जब बिसोलटी क्रान्तिकारी दल के नेता बने, तब से सुधारवादी संघ की लोकप्रियता घटने लगी। सुधारवादी दल सामाजिक प्रथाओं और व्यवस्थाओं पर जोर देते थे लेकिन क्रान्तिकारी दल अमीरी, गरीबी के भेदभाव पर भी सवाल उठाते थे। बिसोलटी ने क्रान्तिकारी संघ को समाजवादी दल का रूप दिया। वह केवल समाज के आर्थिक समस्याओं को ही हल करना नहीं चाहता था, बल्कि वह अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी सुलझाना चाहता था।

इटली एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की सारी भूसम्पत्ति जमींदारों के हाथ बँट गयी थी। उनका प्रभुत्त्व किसानों के कठोर शोषण के बल पर बढ़ रहा था। क्रान्तिकारी दल इस सामाजिक विषमता का खात्मा करके समाजवादी राज्य कायम करना चाहता था। क्रान्तिकारियों ने समाज-संगठन के इस आदर्श को रूसी क्रान्ति से सीख लिया था। वे रूसी क्रान्ति का रास्ता अपनाना चाहते थे। लेकिन उस समय इस दल का मत-प्रचार केवल शिक्षित और मध्यम श्रेणी तक ही सीमित था, क्योंकि

वह उसका शुरुआती समय था। जनता के संगठन का सवाल उस समय नहीं उठा था और वर्ग बोध भी उस समय जनता में नहीं था।

जनता का खून चूसकर जीनेवाले उच्च वर्ग के लोग समाजवादियों का मत-प्रचार देखकर डर गये। उन्होंने समाजवादी दल के खिलाफ एक तीसरी पार्टी कायम की। इटली के शासन का सारा अधिकार धनिक वर्ग, खासकर सामन्तों (जमींदारों) के हाथ में था। उनका एकमात्र उद्देश्य शोषण और दमन से अपना प्रभुत्त्व कायम रखना ही था। इटली में उस समय तक किसानों की संख्या अधिक होने के कारण वे ही इस शोषण का शिकार बनते थे। वहाँ का उच्च वर्ग जनता का गला घोंटकर अपने आलसी और विलासी जीवन को केवल आगे ही बढ़ाना नहीं चाहता था बल्कि अन्य कमजोर देशों को भी लूटकर अपने को मालामाल बनाना चाहता था। अपने देश की जनता का शोषण और दमन करने के लिए केवल सरकारी कानून ही पर्याप्त होते हैं। लेकिन दूसरे-देशों को हड़प कर उनकी सम्पत्ति को चूसने के लिए सरकारी कानूनों से काम नहीं चल सकता। उसके लिए लड़ाई की आवश्यकता होती है। इटली का शासक यानी उच्च वर्ग भली-भाँति जानता था कि ऐसी लड़ाई अपार सम्पत्ति और कई करोड़ आदमियों का खून पानी की तरह बहाये बिना नहीं लड़ी जा सकती। उसके लिए करोड़ों की संख्या में सैनिकों की भर्ती बहुत आवश्यक थी। इटली में अधिकांश लोग मेहनत मजदूरी करनेवाले खासकर किसान हैं। जनता के शोषण से पलने वाले उच्च वर्ग के लोग ऐसी लड़ाइयों में अपना खून नहीं बहाना चाहते। वे केवल लूट का माल खाना चाहते हैं। उन्होंने सैनिकों के बहाये हुए खून से अपना महल रंगना शुरू कर दिया है। लड़ाई में जो अपरम्पार खर्च होता है वह गरीब जनता से ही वसूल किया जाता है।

फासीवादी पार्टी

लेकिन देश की स्थिति खराब होनवाली थी। सन 1913 में शासक वर्ग ने देखा कि समाजवादी दल जोर पकड़ रहा है। उन्होंने यह समझ लिया कि यदि चार-पाँच वर्ष तक और समाजवादी दल का मत-प्रचार जारी रहा तो सम्भव है कि जनता में वर्ग-बोध पैदा हो और वह संगठित होकर अपने हक के लिए लड़ने लगे। इसलिए वे यह जान गये कि यदि हमें अपना शोषण कायम रखना है- अपने स्वार्थों को आगे भी पूरा करना है तो हमें एक दूसरे दल की स्थापना करनी पड़ेगी, जो जनता के ध्यान को आकर्षित करे और लोकप्रियता प्राप्त कर समाजवादी या क्रान्तिकारी दल का अन्त कर सके। उच्च वर्ग के इसी उद्देश्य के फलस्वरूप सन 1914 में इटली में

राष्ट्रवादी दल या फासिस्ट संघ स्थापित हुआ। देश के नाम पर जनता को युद्ध में झोंकना फासीवाद की मुख्य रणनीति है। इस दल का नेता बेनिटो मुसोलिनी बना। वह उच्च वर्ग का एक प्रभावशाली नेता था। फासीवादी अपना मत-प्रचार शिक्षित-वर्ग के बीच में नही करते थे बल्कि देश के कोने-कोने में बड़ी धूमधाम से सभाएँ कराते थे तथा किसानों और श्रमजीवी गरीब जनता के बीच जोरों से फासीवाद का प्रचार किया करते थे। इटली की जनता इनकी ओर बड़ी जल्दी आकर्षित हो गयी और झूठी देशभक्ति का नाम सुनकर वह बहक गयी। उनके सामने यही बातें रखी जाती थीं कि तुम अन्य कमजोर और असभ्य देशों पर विजय पाकर अपने देश की शान बढ़ाओ, वीर पूर्वजों का मान कायम रखो और उनके देशों की सम्पत्ति पाकर अपने देश की गरीबी को दूर करो। फासीवादियों ने उस समय इटली की जनता के झूठे देशाभिमान को जगा दिया। उनमें अपनी प्रतिभा के लिए मर मिटने के लिए प्रेरित करनेवाली राष्ट्रीय भावना या देश-भक्ति का भाव पैदा किया और बहुसंख्य जनता उनके बताये हुए मार्ग पर चलने के लिए तैयार हो गयी। फासीवादियों ने थोड़े वर्षों में सारी इटली को एक ऐसी राजनीतिक दशा पर पहुँचा दिया, जबकि सारा देश ही राष्ट्रवाद के पागलपन में डूब गया।

सन 1915 में फासीवाद संघ के लोगों की संख्या करीब तीन हजार ही थी, लेकिन चार-पाँच वर्षों में लोग करोड़ों की तादाद में उसके सदस्य बन गये। इन्हीं लोगों के संघ का नाम 'फासियो' है, जिससे फासीवाद शब्द बना।

प्रथम विश्व युद्ध से सबक

सन 1918 में प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद इटली के (धनी) शासक वर्ग के कायम किये गये फासिस्ट दल ने देखा कि इंग्लैड और जर्मनी ने दुनिया के कमजोर देशों को कब्जे में रखकर अपनी शान बढ़ायी है, उनकी सम्पत्ति से वे मालामाल हो रहे हैं और अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए दोनों लड़ चुके हैं। इटली के फासीवादियों ने इंग्लैड और जर्मनी का रास्ता अपनाने का निश्चय किया।

मुसोलिनी

जब इटली का नेतृत्व मुसोलिनी के हाथ में आ गया, तब उसकी दृष्टि दक्षिणावर्ती अबीसीनिया पर पड़ी। अबीसीनिया को उसके एक अच्छे शिकार के रूप में देखा। मुसोलिनी इटली के उच्च वर्ग का एक प्रभावशाली नेता है। लेकिन वह एक वीर योद्धा होने का दिखावा करता है और जनता उसपर विश्वास कर लेती है। इसी

कारण से फासीवादियों ने अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए उसको नेता बनाया। इटली का नेतृत्व हाथ में आने के बाद मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके उसको अपने कब्जे में रखने की बात इटली की जनता को भली-भाँति समझा दी। उसने जनता को इस भ्रम में डाल दिया कि जब तक हम अबीसीनिया जैसे असभ्य देश को जीतकर उस पर शासन नहीं करेंगे, तब तक अपने वीर पूर्वजों की शान को कायम नहीं रखेंगे और जब तब अबीसीनिया की सम्पत्ति का उपभोग नहीं करेंगे तब तक देश की गरीबी नहीं मिट सकती। इसलिए इटली के हर एक परिवार का कर्त्तव्य है कि वह लड़ाई में अपने नौजवानों को भेजे, सेना में भर्ती करे और उसका खर्च चलाने के लिए धन की सहायता दे।

अबीसीनिया पर आक्रमण

इटली में गरीब घराने के नौजवान ही अपनी जीविका की लालच से सेना में भर्ती होते हैं। मुसोलिनी ने बेचारी अबीसीनिया को हड़पकर अपने फासीवाद का पूरा परिचय संसार को दे दिया। अबीसीनिया के इस युद्ध में इटली के लाखों सैनिको का खून बहा और जनता का अपार पैसा उसमें खर्च हुआ। लेकिन उससे इटली की जनता का कौन-सा फायदा हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह लड़ाई इटली के शासक वर्ग के ही लाभ के लिए हुई है। सभ्यता का पाठ पढ़ाने के बहाने आज अबीसीनिया की जनता सब तरह से लूटी और दबायी जा रही है, लेकिन इटली का गरीब वर्ग इस लूट की सम्पत्ति को भोगने से बिल्कुल वंचित रखा जाता है।

फासीवाद का साथी नाजीवाद

इटली ने जिस शासन प्रणाली को अपनाया वह जर्मनी और जापान इत्यादि पूँजीवादी साम्राज्यों की एक नकल मात्र है। यह कहना अनुचित न होगा कि इटली, जर्मनी और जापान में फासीवादी शासन स्थापित हो गया है, यानी ये सब राष्ट्र फासीवादी हैं। फासीवाद सामाजिक दमन पर कायम हुआ है। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद से जो सामाजिक विषमता यानी गरीबी और बेकारी फैली हुई है, उसका शिकार इटली, जापान, जर्मनी इत्यादि राष्ट्र भी हुए हैं। लेकिन उन देशों का शासनाधिकार एक धनी वर्ग के हाथ में है जो अपनी गुटबन्दी की नीति को अख्तियार किये हुए है। किसान, मजदूर इत्यादि शोषित वर्ग की जनता में क्रान्ति की आग तो धधक रही है, लेकिन उस आग को दमन के बल से बुझाने की कोशिश की जा रही है। इसलिए वहाँ अभी तक कोई गैर सरकारी आन्दोलन प्रबल रूप में उठ खड़ा नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त देश-प्रेम के नाम पर शासक वर्ग भोली-भाली जनता को उकसा रहा है।

नाजीवाद

हम बता चुकें है कि इटली, जर्मनी और जापान आदि साम्राज्यवादी राष्ट्रों में फासीवाद कायम हुआ है। जर्मनी में जो फासीवाद कायम हुआ है उसका दूसरा नाम नाजीवाद या राष्ट्रीय समाजवाद है। इसमें समाजवाद शब्द एक धोखे की टट्टी मात्र है; क्योंकि जर्मनी में उतनी बेकारी फैली हुई है जितनी अन्य किसी देश में नहीं और वह प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। वहाँ के शासक इस अमीरी और गरीबी के भेद को कायम रखने के लिए अपना शोषण बनाये रखना चाहते हैं। नाजीवाद और फासीवाद में कोई भेद नहीं, केवल यही फर्क है कि नाजीवाद का स्थापक हिटलर और फासीवाद का मुसोलिनी है।

फासीवाद और नाजीवाद पूँजीवाद के ही परिणाम हैं और उनमें उत्पन्न हुई सामाजिक विषमता को खत्म करने के लिए समाजवाद ही एकमात्र उपाय है। हिटलर और मुसोलिनी दोनों यह जानते हैं कि संसार के उत्पीड़ित देशों में जो क्रान्ति हो रही है, वह इसी बात के आधार पर है। इसलिए मुसोलिनी कहता है कि फासीवाद पूँजीवाद का दास नहीं है, बल्कि पूँजीवाद की एकमात्र दवा है। हिटलर ने भी इसीलिये अपने दल का

नाम नाजी यानी राष्ट्रीय समाजवाद रखा है। हिटलर और मुसोलिनी दोनों संसार को खासकर अपनी जनता को यह बताया करते हैं कि हमारे वाद को कोई पूँजीवाद या साम्राज्यवाद नहीं कह सकता। दुनिया की गरीबी और बेकारी को हल करने का दावा जैसे समाजवाद रखता है वैसे हम भी एक उपाय पेश कर रहे हैं।

साम्राज्यवादी लड़ाई और फासीवाद

समाजवादी लोग वर्ग संघर्ष के द्वारा पूँजीवाद का अन्त करना चाहते हैं। वे जानते हैं कि राष्ट्रों की आपस की लड़ाई से केवल पूँजीपतियों का ही फायदा हो सकता है। इसके विपरीत जनता को युद्ध से नुकसान ही पहुँचेगा। लेकिन हिटलर और मुसोलिनी जनता के कल्याण का नाम मुँह से जपते हुए भी साम्राज्यवादी युद्धों के परम भक्त हैं। वे ऐसी लड़ाई से अपने स्वार्थ की पूर्ति करने की कोशिश में दिन-रात लगे रहते हैं और ऐसी लड़ाई को मनुष्य जाति के लिए परमोपयोगी और उत्तम साधन मानते हैं। मुसोलिनी और हिटलर यह दिखावा करते हैं कि उन के लिए अपने देश की जनता का ही स्वार्थ सबसे ऊपर है। एक समय मुसोलिनी जर्मनी के नाजीवाद का बड़ा भक्त था और नाजीवाद को फासीवाद का ही संस्करण मानता था। लेकिन जब नाजीवाद जर्मनी में प्रबल शाक्तिशाली बन गया और जाति और भाषा की एकता के नाते जब जर्मनी ने आस्ट्रिया को हड़पना चाहा तो मुसोलिनी भौंहे सिकोड़ने लगा। बेचारी अबीसीनिया को हड़प लेने के बाद मुसोलिनी यह समझ गया कि फासीवाद के पाशविक अत्याचार का मुँहतोड़ जवाब देनेवाले राष्ट्र संसार में मौजूद हैं और इसलिए हिटलर से किसी प्रकार की दुश्मनी रखना ठीक नहीं है। इसी कारण मुसोलिनी ने हिटलर से हाथ मिला लिया। वह देशों को हड़पने की ताक में मुँह खोलकर संसार के सामने खड़ा है। इन दो दानवों की यह नयी एकता बनावटी है; क्योंकि वे अपने स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए ही एक दूसरे का साथ देना चाहते हैं। दोनों ही विश्व शान्ति के नाम पर विश्वक्रान्ति का गला घोंटना चाहते हैं और राष्ट्रों को आपस में लड़ाकर करोड़ों मनुष्यों का खून बहाना चाहते हैं। हिटलर ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "असल बात तो यही है कि विश्वशान्ति का आदर्श उसी दिन सबसे उत्तम प्रकार से संसार में प्रचारित हो जाएगा, जब दुनियाँ के शासन की बागडोर एक ही स्वामी के हाथ में आ जाएगी।" एक दूसरी जगह यह भी लिखा है कि हर एक राष्ट्र को अपनी चमकदार और तेज तलवार को खूब अच्छी तरह ढालने की कोशिश करनी चाहिए।

फासीवाद और नाजीवाद में अन्तर

अभी तक जो कुछ कहा गया है, उससे यह साफ है कि फासीवाद और नाजीवाद में कोई भेद नहीं है। यदि कुछ भेद है, तो वह इटली और जर्मनी की उत्पादन प्रणाली में है। इटली एक कृषि-प्रधान देश है और जर्मनी कल-कारखाना-प्रधान। कल-कारखानों की उन्नति, इटली में उतनी नहीं हुई है, जितनी कि अन्य पूँजीवादी देशों में हो चुकी है। इसके विपरीत जर्मनी एक उद्योग-प्रधान देश है। कल-कारखानों के आधिक्य और पूँजीपतियों के स्वार्थपूर्ण शोषण के कारण यहाँ की गरीबी और बेकारी ने अब भयंकर रूप धारण कर लिया है। वर्ग संघर्ष और विश्वक्रान्ति की आग और समाजवाद के हौवे से भयभीत होकर वहाँ के पूँजीपतियों ने नाजीवाद स्थापित करने के लिए हिटलर के सामने अपनी थैली खोल दी और उसी तरह इटली में फासीवाद कायम करने के लिए वहाँ के जमींदारों ने भी अपनी लूट का बोरा मुसोलिनी के सामने खोल रखा है। इटली ने फासीवादी राज्य की सृष्टि किसानों की जलती चिता के ऊपर और जर्मनी ने नाजीवादी राज्य की रचना मजदूरों की सूखी हड्डियों के ऊपर की है। जापान भी इन्हीं दोनों का अनुयायी है।

संयुक्त मोर्चा

फासीवाद को देखकर संसार के सारे शोषित वर्गों ने आँखे खोल ली हैं। संसार के मजदूर फासीवाद का उत्पीड़न झेल रहे हैं। संसार के शिक्षित लोग भी यह जान गये हैं कि फासीवादी पूँजीपतियों के पक्षधर हैं और वे कोई क्रान्तिकारी नहीं हैं; बल्कि प्रतिक्रियावादी हैं। वे संसार के चक्र को पीछे घुमाकर समाज को बर्बरता की ओर ले जाना चाहते हैं। फासीवाद को जड़ से उखाड़ कर फेंकने के लिए संसार के शोषित वर्गों ने एक प्रबल संयुक्त मोर्चा तैयार किया है।

फासीवाद की तानाशाही

फ्रांस, अमरीका, इंग्लैड़, जर्मनी इत्यादि देशों में संसदीय शासन व्यवस्था केवल नाम मात्र के लिए है। वहाँ के शासन की बागडोर धनिकों के हाथ में है जो जनता को अशिक्षित रखकर और उसे राष्ट्रवाद के भ्रम में डालकर अपनी हुकूमत कायम रखते हैं। वहाँ के मजदूर और किसान को खूब लूटा जाता है और जनता प्रतिदिन गरीब होती जाती है। अब उनमें जागृति पैदा होने लगी है। वह समय जल्दी आनेवाला है जब जनता शासकों के ढोंग को समझ जाएगी। जब फासीवादी देखते हैं कि जनता जाग कर उठ खड़ी होना चाहती है तब वे अपने हाथ में नंगी तलवारें लेकर क्रान्तिकारी जनता को कुचलने लगते हैं।

पूँजीवाद की मृत्यु चेष्टा

आज भारत, चीन जैसे गुलाम देशों में वर्ग संघर्ष द्वारा साम्राज्यवाद को प्रबल चुनौती मिल रही है। इसलिए पूँजीवाद का अन्त करीब लग रहा है। इस विपत्ति से बचने के लिए उसने आज फासीवाद की दवा ईजाद की है। लेकिन जब फासीवादी देशों की जनता भली-भाँति जाग जाएगी और जनता के साथ मिलकर लड़ने लगेगी, तब साम्राज्यवाद और फासीवाद की मौत करीब आ जाएगी।

बाजारों के लिए छीना-झपटी

सभी देशों के भीतर उत्पादन की शक्तियों पर पूँजीपतियों का कब्जा हो जाने के कारण जनता की गरीबी और बेकारी बढ़ गयी है। इससे उनकी क्रयशक्ति गिर गयी है और घरेलू बाजार सिकुड़ गया है। बाजार पर्याप्त रूप में न मिलने के कारण पूँजीपति उपनिवेशों के लिए छीना-झपटी कर रहें हैं जहाँ से उनको कच्चा माल मिल सके और जहाँ अपने कारखानों में बनी हुई चीजें काफी मुनाफे में बिक सकें। इसलिए हिटलर चिल्ला कर कह रहा है कि हमें बाजारों की यानी साम्राज्यों (उपनिवेशों) की आवश्यकता है। मुसोलिनी भी ऐसा ही चाहता है और अबीसीनिया को कमजोर पाकर हड़प बैठा है। चीन भी जापान के पंजे में फँसता जा रहा है। इसलिए फासीवाद का मुख्य उद्देश्य है साम्राज्य स्थापित करना। आज सभी फासीवादी राष्ट्रों में तोप, टैंक, मशीनगन, हवाई जहाज, बम और जहरीली गैसें बनाने में ही जनता का धन खर्च किया

जा रहा है। इस काम की दौड़ में वे एक दूसरे को मात दे रहे हैं। उन देशों के जितने ही लोग हथियार उठाने की ताकत रखते हैं, उन सबको सरकारी नियमानुसार सैनिक-शिक्षा ग्रहण कर सेना में भर्ती होना पड़ता है।

गोली से क्रान्ति का दमन

फासीवादियों की यह तानाशाही अधिक दिन तक नहीं चलेगी। गरीब और पीड़ित जनता जब भूख से तड़पने लगती है और क्रान्ति करना चाहती है। इसके जवाब में फासीवादी गोलियों की बौछार से क्रान्ति का अन्त करना चाहते हैं। जनता पसीना बहाकर जो पैसा कमाती है, वह थोड़े से पूँजीपतियों, जमींदारों और फासीवादी अफसरों के हाथ और लड़ाई के खर्च में चला जाता है।

कॉलेजों से निकले हुए विद्यार्थी युवकों को खेतों में बेगार करना पड़ता है। यह सब राष्ट्र प्रेम के नाम पर हो रहा है मगर सारी कमाई पूँजीपतियों के हाथ में चली जाती है। लेकिन फासीवादी देशों के युवक, किसान, मजदूर और आम जनता अब यह समझने लगी है कि हमारी रक्षा फासीवाद के नाश से ही हो सकती है। वहाँ अब जो कम्युनिस्ट पाटियाँ स्थापित हो चुकी हैं, वे तेजी से क्रान्ति का सैलाब लाने की कोशिश कर रहीं हैं। हिटलर और मुसोलिनी दोनों समझ गये हैं कि उनकी हुकूमत खतरे में हैं। लेकिन उनको अब भी आशा है कि जब दुनियाँ के सभी शोषक पूँजीपति उनके साथ हैं, क्रान्ति की यह लहर रुक जाये। स्पेन के गृह-युद्ध और जापान की शक्ति के प्रदर्शन से उनकी नाड़ियों में नया रक्त बहने लगा है।

सोवियत रूस का सामना

सोवियत रूस की जनता ने क्रान्ति करके अपने देश में समाजवादी शासन कायम किया है। संसार की सभी पीड़ित, शोषित और गुलाम जनता अपने देशों में वर्ग संघर्ष के द्वारा विश्व-क्रान्ति करके पूँजीवाद, फासीवाद और साम्राज्यवाद को मिट्टी में मिलाना चाहती है और संसार में समाजवादी शासन कायम करना चाहती है जिससे जनता के जीवन को सुखी और उन्नतशील बनाया जा सके। इसके लिये वह उन देशों की जी जान से सहायता करने को तैयार है जो उसके उद्देश्य में सहायक है। संसार के शोषित देशों ने भी आपस की एकता की आवश्यकता को पहचान लिया है। ऐसी हालत में हिटलर और मुसोलिनी रूस का गला घोंटना चाहते हैं। इसके लिए वे संसार में समाजवाद विरोधी आन्दोलन चलाकर राष्ट्रों को रूस के खिलाफ लड़ाना चाहते हैं। लेकिन उनकी यह आशा मृत्युशय्या पर पड़े हुए रोगी के जीने की आशा है।

फासीवाद और महिलाएँ

फासीवादी देशों में सभी प्रकार के प्रगतिशील विचारों को रोकने की कोशिश की जा रही है। जिस प्रकार वे जनता के आन्दोलनों और शोषित वर्गों की क्रान्ति को खतम करना बहुत जरूरी समझते हैं, उसी प्रकार नारी जागृति के भाव को रोकते हैं। समाज में महिलाओं का स्थान पुराने समय से ही नीचे बना दिया गया है। हमारे यहाँ भी उनकी कैसी दुर्दशा हो रही है-- पुरुष तबके के लिए किस प्रकार वे साधन बन गयी हैं और अपने नैसर्गिक अधिकारों से वह कितनी वंचित है-- यह किसी से छिपा नहीं है। भारत में महिलाओं की हालत आज जितनी शोचनीय है, उतनी ही अर्धशताब्दी पहले तक पश्चिमी देशों में ईसाई धर्म के सभी पुरोहितों और समाज-सुधारकों ने स्त्री को पापिनी और निर्जीव कहकर उसकी उपेक्षा की और स्त्रियों को बहुत नीचा स्थान समाज में दिया। इसी के चलते यूरोप में पिछली शताब्दी से नारी आन्दोलन जोरों पर है। नारी आन्दोलन को देखकर हिटलर और मुसोलिनी डर गये हैं; क्योंकि उनको डर इस बात का है कि जब महिलाएँ अपने अधिकारों को वापस ले लेंगी, तब समाज को अपनी उन्नत-अवस्था में पहुँचने में सहायता मिलेगी। समाज की उन्नत अवस्था ही समाजवाद है। उसके पहले फासीवाद को अपनी कब्र में जाकर बैठना पड़ेगा। असल में बात भी वही है, जब महिलाएँ खुद आजाद हो जाएँगी तब वह समाज या संसार में किसी की गुलामी, शोषण, दमन या खेद-जनक बात नहीं देख सकेंगी। उसको दूर करने की शाक्ति भी महिलओं में नैसर्गिक रूप से छिपी हुई है; लेकिन जब तक आजाद न होंगी तब तक वे अपनी इस शक्ति का सदुपयोग नहीं कर सकेंगी। लेकिन फासीवादी शासक संसार की प्रगति को रोक कर उसको बर्बरता की ओर ले जाना चाहते हैं। महिलाओं की गुलामी को और मजबूत बनाना चाहते हैं।

नारी आन्दोलन पर रोक

जर्मनी, इटली और जापान में नारी आन्दोलन को सरकारी कानून से रोकने की भरसक कोशिश हो रही है। वहाँ महिलओं के नैसर्गिक, पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक अधिकार छीने जा रहे हैं। धनी और विलासी शासक वर्ग उनकों अपने जूते के नीचे ही रखना चाहता है। वह महिलाओं के शोषण के बल से सुख भोगना ही

अपनी जिन्दगी का मुख्य लक्ष्य मानता है। सभी फासीवादी देशों के शासक महिलाओं को विलासिता की सुन्दर साम्रगी समझते हैं और श्रमजीवियों के रक्त की तरह युवतियों के यौवन-रस को भी वे चूसना चाहते हैं, जब महिलाएँ पुरुषों के समान स्वतन्त्र होकर बाहर काम करने जाएँगी, जब वे उनकी विलासिता के रंगमंच में नाचनेवाली कठपुतली नहीं रह जाएँगी। यह तभी सम्भव है जब महिलाएँ घर के भीतर ही पड़ी रहें। फासीवादी देशों में महिलाओं के ऊपर दमन के ऐसे कानून लादे गये हैं जिससे वे पुरुषों के समान शिक्षा नहीं पा सकतीं, नौकरी नहीं कर सकतीं और अपने अधिकारों को हासिल नहीं कर सकतीं। पति की सेवा और बाल-बच्चों का पालन पोषण करना ही स्त्रियों का कर्तव्य बताया जा रहा है। इन देशों में छात्राओं को घरेलू धन्धा सिखाने के अतिरिक्त कोई उच्च शिक्षा नहीं दी जाती। जो शिक्षा लड़कियों को दी जाती है, उसमें यही समझाया जा रहा है कि घर के बाहर जाने से नारी-जीवन की हानि हो जाती है। महिला घर की लक्ष्मी है और पति चाहे कैसा भी हो देवता मानकर उसकी सेवा करना ही पत्नि का एकमात्र कर्तव्य है। फासीवादी शासन-विधान के अनुसार पत्नि पति के, पुत्री पिता के और बहन भाई के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं कर सकती और जो महिलाएँ इस विधान के बाहर जाने लगती हैं यानी पुरुष के खिलाफ संघर्ष करना चाहती हैं उनको कड़ी अदालती सजा भोगनी पड़ती है। महिलाओं की गुलामी हालत को कायम रखने के उद्देश्य से जर्मनी में हिटलर ने जो कानून पास किया है, उसका नाम उसने सुधारवादी रखा है। उसका कहना है कि जब महिलाएँ घर के बाहर काम करने जाती हैं, तब पारिवारिक झगड़ा उत्पन्न होता है इसलिए महिलाओं को नौकरी नहीं करनी चाहिए। हिटलर की हुकूमत के पहले जर्मन सरकारी ओहदों पर महिलाएँ भी रखी गयी थीं, लेकिन अपना शासन आरम्भ करते ही उसने महिलओं को नौकरी से अलग कर दिया।

फासीवाद और धर्म

हम दूसरे अध्याय में कह चुके हैं कि धर्म के संचालक पुरोहित वर्ग अभी तक शासकों के हाथ में रहे हैं। ये दोनों वर्ग साधारण जनता की कमाई को चूसकर अपना प्रभुत्त्व कायम रखते हैं। आम जनता के ऊपर जैसे राजा, महाराजा और पूँजीपति अपना अधिकार जमाते हैं। वैसे ही पुरोहित वर्ग भी परलोक और ईश्वर-भजन, पुण्य और दान पर न जाने कितना धन समाज से यह वर्ग चूस लेता है। चाहे आप किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को लीजिये, पुरोहित लोग जनता के ऊपर शासन करनेवाले शासकों का ही साथ देते हैं। धर्म और सम्प्रदाय के आडम्बर और उसकी बातें केवल ढोंग मात्र हैं जिस बहाने जनता का शोषण और दमन होता है।

धार्मिक विषमता का अन्त

जैसे पूँजीवाद, जमींदारी और साम्राज्यशाही मिटटी में मिल जाएँगे, वैसे ही धर्म भी अपने कब्र में घुस जाएगा। धर्म या ईश्वर हमें स्वर्ग में पहुँचानेवाली कोई चीज नहीं है, बल्कि हमारे ऊपर हुकूमत और हमारा शोषण करने का शासकों का एक हथियार है। जनता के सामने इस समय सवाल रोटी का है। रोटी का सवाल तभी हल होगा, जब सारे संसार में समाजवादी शासन कायम होगा। समाजवादी राज्य में सारी सम्पत्ति और हुकूमतें सारे समाज के हाथ में जाएँगी यानी वह व्यक्ति विशेष के हाथ में नहीं रह जाएगी। मौजूदा साम्राज्यवादी शासन को जड़ से उखाड़ कर फेंके बिना समाजवादी शासन कायम नहीं हो सकता। यह जनता के संगठन के बाद ही हो सकेगा। जनता जब संगठित होकर पूँजीवाद, जमींदारी और साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ेगी तब समाज की काया पलट जाएगी और सारी सम्पत्ति और सारी शाक्ति जनता के हाथ आ जाएगी। इसके बाद धीरे-धीरे विषमता का अन्त हो जाएगा।

धर्म और शासक वर्ग

धर्म जनता के संगठन के रास्ते पर रुकावट डालता है। दुनिया के किसी भी देश को लीजिये वहाँ की जनता कई धर्मों और सम्प्रदायों में बँटी हुई है। एक धर्म, या सम्प्रदाय वाले दूसरों को अपना विरोधी समझकर उनसे लड़ते रहते हैं। समाज की

आरम्भिक अवस्था से लेकर अभी तक हर एक धर्म के संचालक राजकीस शासन के इशारे पर चलने वाले ही होते आये हैं। दोनों ही वर्ग-पुरोहित और शासक मिलकर जनता को अपने स्वार्थ के लिए दबाते और उस पर हुकूमत करते आये हैं। दोनों की साँठ-गाँठ पुराने समय से ही चली आ रही है। इसलिए जनता पर हुकूमत करने वाले धर्म को बनाये रखना चाहते हैं। पूँजीवादी और साम्राज्यवादी सरकार धर्म को बढ़ावा देना अपना काम समझती हैं, क्योंकि सरकार को हमेशा यह भय रहता है कि जनता अपने धार्मिक भेदभाव भुलाकर और एक सूत्र में बँधकर अपने अधिकारों के लिए सरकार से कहीं लड़ न जाये? जमींदार, पूँजीपति और पुरोहित वर्ग साम्राज्यवादियों के पैर हैं। इन वर्गों का अस्तित्व मिट जाने पर सरकारों का भी सर्वनाश हो जाएगा। इसलिए सरकार और उसके सहायक यह चाहते हैं कि धर्म बना रहे और जनता कई धर्मों में बँटकर आपस में लड़ती रहे, जिससे उसमें संगठन न होने पाये। जब किसी देश की हालत ऐसी हो जाती है, तब वहाँ जनता का संगठित होना कठिन हो जाता है और शासकों का स्वार्थ असानी से पूरा हो जाता है।

धर्म की आड़ में फासीवाद की अनीति

फासीवाद वास्तव में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का चरम रूप है। फासीवादी धर्म को अपना मजबूत हथियार समझते हैं। वे यह चाहते हैं कि जनता में संगठन न होने पाये। क्योंकि जब जनता संगठित होगी तब देश में क्रान्ति शुरू हो जाएगी और शोषित वर्ग फासीवाद का समूल नाश कर समाजवादी शासन करेंगे। इसलिए वे जनता को धर्म और ईश्वर के नाम पर बहकाते हैं। इतना ही नहीं, वे पुरानी अन्धविश्वासपूर्ण प्रथाओं, प्रवृत्तियों और व्यवहारों को कायम भी रखना चाहते हैं। और जनता पर इस बात का दबाव डालते हैं कि वह पुराने रास्ते पर चले। शिक्षा भी इसी उद्देश्य के अनुकूल दी जाती है। हिटलर और मुसोलिनी की तानाशाही आरम्भ होते ही जो लोग इस सनातन मार्ग का विरोध करते हैं, वे कड़ी सरकारी सजा के पात्र बन रहे हैं। जापान, इटली, जर्मनी इत्यादि देशों में सारी पैशाचिक प्रवृत्तियाँ राष्ट्रवाद, देश-भक्ति, ईश्वर और धर्म की दुहाई पर चलती हैं। धर्म और ईश्वर के नाम पर वहाँ करोड़ों रुपया उड़ाया जा रहा है।

फासीवादियों ने पुरोहितों के हाथ को भी मजबूत बनाया है। पुरोहित वर्ग भी उसके बदले फासीवादी सरकार के प्रति श्रद्धा और झूठे राष्ट्रवाद का विश्वास जनता के मन में पैदा करते हैं।

फासीवाद और नस्लवाद

अनार्यों का इटली से निर्वासन

फासीवाद केवल संकुचित राष्ट्रवाद और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों पर ही निर्भर नहीं रहता, बल्कि नस्लवाद भी उसकी रणनीति का एक मुख्य अंग है। मुसोलिनी कहता है कि केवल शुद्ध आर्य ही इटली में रह सकता है। वह केवल इटैलियन नस्ल को शुद्ध आर्यों की सन्तान मानता है। वह इटली में रहने वाली काली नस्ल को और आसपास के जुगोस्लाव जैसे नस्लों को मिटा कर अपने देश को नस्लीय संकट से बचाना चाहता है। इसलिए मुसोलिनी बाहर से किसी भी नस्ल को इटली में आकर बसने नहीं देता।

जनसंख्या की वृद्धि और विवाह

मुसोलिनी इटली की जनसंख्या को भी बढ़ाना चाहता है। इसके लिए वहाँ विवाह करनेवालों को धन की सहायता दी जाती है।

हिटलर का नस्लीय पक्षपात

मुसोलिनी की भाँति हिटलर भी जर्मनी में शुद्ध जर्मन नस्ल को ही रखना चाहता है। वह शुद्ध जर्मन नस्ल को ही आर्य मानता है। मुसोलिनी की तरह हिटलर ने भी अपने देश की जनसंख्या बढ़ाना अपना मुख्य काम समझ रखा है। इसके लिये सरकार की ओर से विवाह करने वाले युवक-युवतियों को आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध कर रखा है। हिटलर का सिद्धान्त है कि जर्मनी शुद्ध आर्यों का देश है और उसके लिये माता-पिता की कई पीढ़ियों तक अन्य नस्लों का रक्त-सम्मिश्रण न होना बहुत जरूरी है; इसलिए जर्मनी वाले अन्य देश या नस्ल से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रख सकते। कई शताब्दियों से यहूदी लोग जर्मनी में रहते हैं। वे वेषभूषा, सभ्यता और संस्कृति में जर्मन नस्ल से भिन्नता नहीं रखते। परन्तु हिटलर ने उनको भी देश से निकालने की व्यवस्था करके अपने शासन की क्रूरता का परिचय दिया है। हिटलर की हुकूमत के पहले सरकारी ओहदों पर यहूदी लोग भी रखे गये थे। जर्मन शासन की बागडोर अपने हाथ

में पाते ही उन लोगों को अपने काम से हाथ धोना पड़ा।

नस्लवाद का ढोंग क्यों?

जब दुनिया में क्रान्ति की ज्वाला धधक रही है, ऐसे समय फासीवादी अपने कुशासन को कायम रखने में बड़ी कठिनाई देखते हैं, तब अपने शासन की जड़ को मजबूत रखने के लिए उनको कई तिकड़मों का सहारा लेना पड़ रहा है। राष्ट्रवाद, ईश्वरवाद और नस्लवाद उन तिकड़मों में मुख्य है। जब अन्य देशों की जनता उन्नति की ओर बढ़ती जा रही है, हिटलर और मुसोलिनी अपनी जनता की प्रगति को केवल रोकना ही नहीं चाहते बल्कि वे उसको पीछे लौटाने की कोशिश भी कर रहे हैं। वहाँ के साहित्य, कला और वैज्ञानिक आविष्कारों के जरिये भी इसी उद्देश्य की पूर्ति की जा रही है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि फासीवाद प्रतिक्रियावादी शक्तियों का केन्द्रीभूत शासन है।

फासीवाद का अन्त और समाजवाद

शासक और शासित राष्ट्र

पहले के अध्यायों से पाठकों को इस बात का पता चल गया होगा कि यह संसार या मानव-समाज कहाँ और किन-किन दशाओं को पार करते हुए आगे बढ़ रहा है और उसकी वर्तमान स्थिति कैसी है! अब हमें देखना है कि वह किधर जाना चाहता है।

जिस प्रकार हम मानव-समाज को दो वर्गों यानी शोषक या शासक और शोषित या शासित वर्ग में बाँट सकते हैं, उसी प्रकार दुनिया के देशों को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं। उनमें एक वे देश हैं जो दूसरे कमजोर देशों को अपने कब्जे में रखे हुए हैं और उन पर निर्दय शासन करते हुए उनकी सारी सम्पत्ति को चूस रहे हैं। ऐसे राष्ट्रों का नाम है-- साम्राज्यवादी और फासीवादी। दूसरे, वे कमजोर देश हैं, जो इन साम्राज्यवादियों के शोषण और दमन का शिकार बने हुए हैं और जहाँ की जनता में अधिकांश भूखी, बेकार और उन्नति के साधनों से हीन है। दुनियाँ के सारे कमजोर देश इन लुटेरे साम्राज्यवादी शासकों के हाथ बँट गये हैं। जो देश अभी इनका गुलाम पूरी तरह नहीं बने, उन पर ये अपना दाँत गड़ा रहे हैं। इस काम में वे एक दूसरे को अपना शत्रु समझ रहे हैं। इसी दुश्मनी के भाव का परिणाम पिछला विश्व युद्ध था। इस समय भी वे एक भावी लड़ाई की तैयारियाँ कर रहे हैं।

वर्ग संघर्ष और समाजवाद

लेकिन जनता चाहे गुलाम देश की हो या साम्राज्यवादी राष्ट्र की हो प्रतिदिन गरीब होती जा रही है। और वह यह समझने लगी है कि उसकी गरीबी और बेकारी का कारण जमींदार, पूँजीपति और सरकार का शोषण है। इसलिए सभी देशों की शोषित जनता संगठित होकर शोषकों के अस्तित्व को मिटाना चाहती है और शासन अपने हाथ में लेना चाहती है। आज जो देश दबाये गये हैं, या चूसे जा रहे हैं, वहाँ की जनता में वर्ग संघर्ष पैदा हो गया है। भारत, स्पेन, चीन इत्यादि देशों में क्रान्ति की ज्वाला जल रही है। जर्मनी, जापान, इटली इत्यादि फासीवादी देशों में भी हालाँकि राष्ट्रवाद और देशभक्ति का झूठा पाठ पढ़ाया जा रहा है फिर भी वहाँ की जनता

में क्रान्ति का भाव पैदा हो रहा है। यह भी वर्ग संघर्ष का रूप धारण कर रहा है। थोड़े ही दिनों के बाद सारे संसार में वर्ग संघर्ष द्वारा विश्व-क्रान्ति आयेगी। इस क्रान्ति की आग में पूँजीवाद और फासीवाद जल कर राख हो जाएगा और समाजवादी शासन कायम होगा।

जब सारे संसार में समाजवादी राज्य कायम होगा, तब गरीब-अमीर, शासक-शासित, शोषक-शोषित, सुखी-दुखी इत्यादि का भेद मिट जाएगा और किसी तरह की विषमता नहीं रहेगी। क्योंकि उस समय समाज की सारी सम्पत्तियाँ और हुकूमतें जनता के हाथ आ जाएँगी। सब को यथाशाक्ति काम मिलेगा और जीवन की सारी सामग्रियाँ और उन्नति के सारे साधन सबको समाज की ओर से दिया जाएगा। सबको समान रूप से जीने का अधिकार रहेगा। कोई किसी को दबायेगा नहीं।

समाजवाद का आविष्कार

समाज की दशा की खोज वैज्ञानिक रूप में सबसे पहले कार्ल मार्क्स ने की थी। उनका सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसी बात का समर्थन करता है कि संसार में समाजवादी अवस्था आने वाली है। संसार उसी अवस्था की ओर बढ़ रहा है। रूस इस बात का उदाहरण सबसे पहले रख रहा है। हालाँकि वहाँ अभी पूर्ण रूप से साम्यवाद नहीं आया है फिर भी वह उसी पूर्णावस्था की ओर बढ़ रहा है और अन्य देशों को भी उस ओर ले जाना चाहता है।

समाज की उन्नत अवस्था समाजवाद

जब हम मानव-समाज के विकास पर दृष्टि डालते हैं, तब हमें ऐसा लगता है कि हालाँकि समाज अभी तक आगे बढ़ता जा रहा है फिर भी वह अपनी उन्नत अवस्था पर नहीं पहुँचा है। क्योंकि हम समाज की उसी अवस्था को उन्नत कहेंगे, जिसमें कोई सामाजिक विषमता नहीं रहेगी। समाज गुलामी की अवस्था और उसके बाद सामन्तवाद की अवस्था को पार कर रहा है। सामाजिक- विषमता बढ़ती हुई अब अपनी चरम सीमा तक पहुँच गयी है। यह समाजिक विषमता तभी मिटेगी, जब संसार में समाजवादी शासन कायम होगा। उसी अवस्था को हम समाज की उन्नत अवस्था कह सकते हैं।

फासीवाद और क्रान्ति

क्रान्ति का दमन

फासीवादी देशों में भी दूसरे गुलाम देशों के समान क्रान्ति की आग धधक रही है। वहाँ के किसान, मजदूर और अन्य शोषित वर्ग पूँजीपतियों, जमींदारों और फासीवादी सरकार से लड़ने के लिए तैयार हो रहे हैं। लेकिन कई प्रकार से उसको दबाने की कोशिश भी हो रही हैं। आन्दोलन करना या विद्रोह करना वहाँ गैरकानूनी है। क्रान्तिकारी लोगों को बड़ी-बड़ी सजाएँ दी जाती हैं। सरकार या शासकों के विरुद्ध कोई सभा करना उन देशों में मना है। फासीवादियों के अन्यायपूर्ण शासन के विरोध में कोई चूँ तक नहीं कर सकता। लेकिन जनता जितनी ही दबायी जाती है, उसके भीतर क्रान्ति की उतनी ही आग जलती जाती है।

दमन की अन्तिम सीमा

जर्मनी का शासन अपने हाथ में लेने के पहले हिटलर ने वादा किया था कि उसकी हुकूमत में लोगों को पूरा-पूरा अधिकार मिलेगा। शासन की बागडोर हाथ में आते ही, उसने जर्मनी की सभी पार्टियों का खात्मा कर दिया और सभी मजदूर संघों को हथिया लिया। इस अन्याय के खिलाफ अगर कोई बोलता है, तो उसे कठोर सजा दी जाती है। जो लोग उसके सामने (हिटलर से) अपने अधिकारों को पेश करने जाते हैं, वे जेलों में ठूँस दिये जाते हैं। बहुत से क्रान्तिकारी बन्द कोठरियों में डाल दिये गये हैं। हड़ताल करना गैरकानूनी है। हिटलर ने सभी कम्युनिस्ट, समाजवादी और जनतंत्रवादी पार्टियों को प्रतिबन्धित कर दिया। जर्मनी में आजकल समाजवादियों और यहूदियों की सम्पत्ति छीन ली जाती है।

उपसंहार

पिछले अध्यायों से यह साफ है कि फासीवाद एक तरह की गुण्डगर्दी के जरिये शासन सत्ता के इस्तेमाल का नाम है। यह शासन आज खतरे में है। लेकिन फासीवादियों का विश्वास यही है कि संसार में उन्हीं की जीत होगी। मुसोलिनी यह बात चारों ओर फैला रहा है कि सारा यूरोप फासीवादी हो जाएगा। उसका कहना है कि हर एक पश्चिमी देश में संगठित, प्रभुत्त्वशाली गणतंत्र शासन स्थापित हो जाएगा यानी फासीवादी तानाशाही का राज कायम हो जाएगा।

अपनी साम्राज्यवादी प्यास को बुझाने के लिए सभी फासीवादी देशों ने पूर्वीय यूरोप के छोटे-छोटे स्वतंत्र देशों और सोवियत रूस पर आक्रमण करने के लिए एक संयुक्त मोर्चा तैयार कर लिया है। इस मोर्चे का सामना करने के लिए फ्रांस, सोवियत रूस और आजादी चाहने वाले अन्य छोटे-छोटे देशों ने मिलकर एक दूसरा संयुक्त मोर्चा तैयार किया है। इसके चलते फासीवादी तानाशाही ही खतरे में है। इसीलिए आज जर्मनी सोवियत रूस पर आक्रमण करने से डरता है। इसके अतिरिक्त फासीवादी देशों की जनता भी आज अपने शासकों के जुल्म का खात्मा करने के लिए तैयार हो रही है। जर्मनी, पोलैंड़, आस्ट्रिया इत्यादि देशों में समाजवादी और कम्युनिस्ट पार्टियों का एक जाल सा बिछ गया है। वर्ग संघर्ष और विश्व-क्रान्ति की आग भीतर-भीतर ही जल रही है जो समय आने पर बाहर ज्वाला बनकर निकलेगी और फासीवादी शासन का महल उसमें जलकर खाक हो जाएगा।

* * *

इस पुस्तिका का प्रकाशन 1939 में हुआ था। उसके 5 वर्ष के भीतर ही हिटलर की अगुवाई में फासीवाद ने विश्व युद्ध छेड़ा और अपनी 256 में से 200 डिविजन फौज सोवियत रूस के खिलाफ तैनात की। फासीवाद को सोवियत रूस के हाथों ही हुई। फासीवाद का विनाश हो गया लेकिन इसने करोडों लोगों की जान ली पूरा यूरोप राख और मलवे के ढ़ेर में बदल गया। हिटलर ने अपने तहखाने में आत्म हत्या कर ली। मुसेलिनी को इटली की जनता ने पीट-पीट कर मार दिया और उसकी लाश रहे की ढ़ेर पर फेंक दी। इस पुस्तक में जो सम्भावना व्यक्त की गयी थी, वह पूरी तरह सही साबित हुई।

आज एक बार फिर जब पूँजीवाद का संकट अपने चरम पर है तो दुनिया भर में फासीवाद दुबारा सर उठा रहा है। क्या इस बार उसका अन्त पहले से भिन्न होगा?

--सम्पादक

गार्गी प्रकाशन की अनूदित पुस्तकें

नयी किताबें

1. एक बहुत लम्बा खत	मरियामा बा	60.00
2. पत्थरों का देश	अलेक्स ल गुमा	120.00
3. खून की पंखुड़ियाँ	न्गुगी वा थांगो	300.00
4. डॉ. कोटनिस की स्मृति में	शङ श्येनकुङ, लू चीशन, चाङ छाङमान	80.00
5. जनाब कोयनर	बर्तोल्त ब्रेख्त	60.00

---

1. उदारवादी वायरस	समीर अमीन	50.00
2. चेतना का मण्डीकरण	जैरी मैण्डर	15.00
3. मुनाफे की जकड़ मे विज्ञान	रिचर्ड लेविन्स/रिचर्ड लेवोन्टिन	100.00
4. साम्राज्यवाद आज	संकलन	80.00
5. आग की यादें	एदुआर्दो गालेआनों	80.00
6. अन्तहीन संकट	जोन बेलामी फोस्टर/रॉबर्ट मैक्केज्नी	150.00
7. इतिहास जैसा घटित हुआ	संकलन (1950-2000)	150.00
8. डॉक्टर नार्मन बेथ्यून की अमर कहानी	सिडनी गार्डन/ टेड एलन	160.00
9. हो ची मिन्ह	सूफी अमरजीत	100.00
10. जंगली घास (गद्य कविताएँ)	लू शुन	30.00
11. लू शुन: एक परिचय	फेंग शुएफेंग	20.00
12. समाजवाद का ककहरा	लियो ह्यूबरमन	40.00
13. एक विराट जुआघर	फिदेल कास्त्रो	30.00
14. आधुनिक मानव का अलगाव	फ्रित्ज पापेनहाइम	80.00
15. वित्तीय महासंकट	संकलन	80.00
16. विश्वव्यापी कृषि संकट	संकलन	50.00
17. विश्व खाद्य संकट	संकलन	50.00
18. असमाधेय संकट	संकलन	50.00
19. क्यूबा क्रान्ति के पचास वर्ष	संकलन	30.00
20. विज्ञान और वैज्ञानिक नजरीया	संकलन	40.00